अहिंसा प्रचार-माला का द्वितीय प्रसून

श्री

अहिंसा-प्रदीप

मनुस्मृत्यादि धार्मिक ग्रन्थों से सयुक्तिक
अहिंसा का मण्डन

लेखक—
धीरेन्द्रकुमार शास्त्री, न्यायतीर्थ

प्रकाशक
अहिंसा प्रचारक संघ, काशी

रामनवमी के सुवर्ण अवसर पर

सम्वत् १९९४

प्रथम बार ५०००

समर्पण

मैं आज अपना अहोभाग्य समझता हूं कि जिनके दया दाक्षिण्य आदि गुणों से आकृष्ट होकर इस छोटी सी पुस्तिका के संकलन करने में समर्थ हुआ हूं। "और जिनके सफलता से अपने उद्देश्य की पूर्त्ति की ओर उन्मुख हुआ।" उन्हीं श्रीमान् बाबू चक्रेश्वर कुमार जी बी० एमसी०, बी० एल०, एम० एल० ए० (बिहार) के कर-कमलों में इस छोटी सी भेंट लेकर उपस्थित हुआ हूं, आशा है आप इसे स्वीकार कर अनुग्रहीत करेंगे।

आपका गुणानुरागी

—लेखक

दो शब्द

समस्त भूमंडल में अहिंसा ही एक मानवीय धर्म माना गया है। भले ही कुछ स्वार्थ लोलपियों ने हिंसा को भी धर्म बताया है। किन्तु आज यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि मानवीय सुख शांति अहिंसा में ही अन्तर्हित है। महावीर, बुद्ध, महात्मा गाँधी जैसी विभूतियों ने "अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्मपरमं" अहिंसा को ही परमब्रह्म एवं सब सिद्धियों का अमोघसाधन बताया है और अपने जीवन में पूर्णरूप से उसका आचरण किया है। राष्ट्र की आजादी की समस्या भी अहिंसा के बल पर ही सुलझेगी। अतः हम मनुष्य हैं हमारा कर्त्तव्य है कि हम पैशाचिक कृत्यों को छोड़ें और सात्विक प्रवृत्तियों को करके मनुष्यत्व प्राप्त करें। कहने का तात्पर्य यह है कि हम सच्चे अहिंसक बनें। बस लेखक का उद्देश्य भी इस पुस्तक द्वारा मानव-समाज के निकट अहिंसा का संदेश पहुंचाने का है। श्रीमान् बाबू चक्रेश्वरकुमार जी बी० एससी०, बी०एल०, एम०एल०ए० को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। जिनके द्रव्य से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है। आप दयाप्रेमी, दानवीर, गम्भीर व्यक्ति हैं। आपने अहिंसा प्रचारक संघ को १०१) इस वास्ते प्रदान भी किया है कि चन्द्रावती में जो वर्षों से पशुबलि होती आ रही है उसके रोकने का उपाय किया जाय। आवश्यकता पड़ने पर यथोचित मासिक सहायता भी देने का वचन दिया है इसमें संदेह नहीं कि आपका वंश का वंश उदारता आदि गुणों की खानि सदा से बना आया है। आप साधारण से साधारण जनता के भी अत्यन्त प्रिय हैं यही बात है कि आप इस वर्ष विहार चौम्बर ऑफ कॉमर्स की सीट से असेम्बली के लिये चुने गये हैं। आशा करता हूं कि संघ को आपका इसी प्रकार सदा सहयोग मिलता रहेगा।

—लेखक

अहिंसा-प्रदीप

या श्रेयो जगतां, ययैव सहितो धर्मोऽर्थतामश्नुते,
यस्यामेव समस्तशान्तिरखिला सांसारिकप्राणिनाम् ।
सत्कल्पव्रततीमिवातुलफलां कारुण्यनिष्पन्दिनीं,
वन्दे तामरविन्दसुन्दरमुखीदेवीमहिंसामहम् ॥

अनादि कालसे संसारमें भ्रमण करता हुआ जीव नाना प्रकारके सुखों एवं दुःखोंको भोगता है। इसका मुख्य कारण कर्म ही है। कर्म दो प्रकार का होता है शुभ एवं अशुभ। अशुभ कर्म हिंसा, (किसी जीव को सताना) असत्य, चोरी आदि है। शुभ कर्म अहिंसा, (किसी जीव को न सताना) सत्य, चोरी न करना इन्द्रिय-दमन, पवित्रता, दानदेना, पशुशाला, अनाथालय औषधालय आदिका खुलवाना है। इनमें मुख्य धर्म दया या अहिंसा ही है। शेष सत्य, संयम आदिक अहिंसा को ही रक्षाके लिये हैं। ऐसा महापुराण में भी कहा है:

दयामूलो भवेद्धर्मो दयाप्राणानुकम्पनम् ।
दयाया परिरक्षार्थं गुणाः शेषाः प्रकीर्तिताः ॥

यही सामान्य धर्म है। इसमें किसीका भी भिन्न मत नहीं है।

सन्ध्या तर्पण आदिमें भिन्न मत हो सकता है। इसलिये विशेष धर्मका वर्णन न करके सामान्य धर्म (जो कि प्राणिमात्रका धर्म है) ही लेखक को अभीष्ट है। जिस का स्वरूप लोक व्यवहार अनुभव तथा आगम द्वारा लिखा जायगा। लोक व्यवहार से यदि विचार किया जाय तो समस्त प्राणियोंके चित्तमें दयाका संचार अवश्य है। यदि कोई बलवान् पुरुष निर्बल को मारता होगा तो बलवान् उसको बचानेका प्रयत्न अवश्य करेगा। यदि चोर किसीको लूट रहा हो तथा बिल्ली, कुत्ते को कोई मार रहा हो उनके आक्रन्दनको सुननेवाले अवश्य छुड़ाने का उद्यम करेंगे। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्राणियों के चित्त में दया स्वभाव से ही है। तो भी कुछ जिह्वास्वाद के लम्पटी मांसाहारमें लुब्ध हो कर दयाधर्मसे विमुख हो जाते हैं। भोजन चाहे कितना ही सुन्दर क्यों न हो, यदि उसमें लेशमात्र भी विष पड़ जाय तो फिर वह ग्राह्य नहीं रहता। इसी प्रकार दयारहित पुरुष कितने भी शुभ कर्म करे, फिर भी वह लोकमें निन्दनीय है और जप, तप आदि सब उसके निष्फल हैं।

दूसरे यह कि मांसाहारी भगवद्भजन, सन्ध्या आदि कुछ भी धर्म कर्म करने का पात्र नहीं है। द्विजातिको स्नान करके सन्ध्यादि कर्म करना चाहिए, बिना स्नान किए सन्ध्यादि कर्म नहीं हो सकते। मुर्देको छूकर स्नान करना बताया है, तब शास्त्रोक्त विधि है, जब बकरा भैंसा आदि का मांस भी मुर्दा है। उसके खानेसे स्नान शुद्धि कैसे गिनी जायगी, जब पेटमें मुर्दा है तो बाह्य शुद्धिसे क्या लाभ, और दूसरे जब कोई मर जाता है तो उसको जलानेके लिये

नगरके बाहर कोसोंकी दूरी पर ले जाकर गाड़ते या जलाते हैं। वे स्थान मरघट कहलाते हैं जो अपने पेटोंको मांससे भरते हैं वे कैसे विवेकी हैं, यह विचारणीय विषय है। मांसाहारीके शरीरसे दुर्गन्ध आती है। मछली आदिके काटने पर जो सफेद पानी निकलता है, वह कितना दुर्गन्धमय होता है कि जिसकी दुर्गन्धसे मनुष्यको वमन हो जाता है। कोई कोई मांसाहारी कहते हैं कि मांस खानेसे बल बढ़ता है यह उनकी बड़ी भारी भूल है। मांस खानेसे क्रूरता बढ़ती है, न कि बल। क्रूरता किसी पुण्य कर्मको अपने पास तक नहीं फटकने देती, इसीलिये उनको इहलोक वा परलोकमें दुखी होना अनिवार्य है। रही वीरताकी बात, वह भी मांसका गुण नहीं है, किन्तु मनुष्यका ही नैसर्गिक गुण है। कारण यह कि नपुंसकको कितने पुष्ट पदार्थ क्यों न खिलाए जावें वह अवश्य ही युद्ध से भाग जायगा।

मांसाहारी जीवों की पहचान

जीभसे चाटकर पानी पीना, पसीना न आना, थोड़ा चलने पर हांफ जाना दाँत व नाखूनोंका तेज और टेढ़ा होना इत्यादि—चिह्न वाले जीव मांसाहारी होते हैं, मनुष्यकी प्रकृति इससे सर्वथा भिन्न है। दूसरा कारण यह कि जो कच्ची सब्जी खा सकता है वह कच्चा मांस नहीं खाता। जब कि गधा और सूअर मांसाहारी न होते हुए प्राण जाने पर भी मांसका स्पर्श नहीं करते, तो बताइए जो मनुष्य मांस खाते हैं वे किस श्रेणीमें रक्खे जायँ।

शंका—धर्मके नाम पर की गई हिंसा हिंसा नहीं होती। धर्मके नाम पर हम कुछ भी करें सब क्षमा योग्य है। कहा भी है कि,

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।

उत्तर—यह कितनी अयोग्य युक्ति है। विचारणीय विषय है कि जो अपने भोग मात्रके लिये मांस खाते व शराब पीते हैं, वे इन कर्मोंको बुरा कहते हैं, और अपनेको व्यसनी तथा पापी भी उद्घोषित करते हैं, और उससे छूटने का प्रयत्न भी करते हैं। इसी प्रकार प्रयत्न करते हुए कभी छूट भी जाते हैं किन्तु जो धर्मके नामपर सैकड़ों बकरोंको तलवार के धार उतार देते हैं और देवी देवताओंके नाम पर शराब पीते हैं, और ऐसा करके प्रसन्न होते हैं और अपनेको धर्मात्मा प्रकट करते हैं, तो क्या ऐसे धर्मान्ध पुरुषोंका कभी छुटकारा हो सकता है? नहीं, अन्य क्षेत्रमें किया गया पाप प्रायश्चित करनेमें छूट जाता है किन्तु धर्म के नाम पर किया गया पाप बज्रके लेखके समान हो जाता है अर्थात् उससे छूटना कठिन है। तथोक्तम्

अन्यस्थाने कृतं पापं, धर्मस्थानेविनश्यति।
धर्मस्थाने कृतं पापं, वज्रलेखो भविष्यति॥

शङ्का—कुछ लोग कहते हैं कि जो धर्मके नामपर बकरादि कटाता है वह त्यागी है। साल छै महीने बकरेको पालकर वह अपने सामने उसकी गर्दन कटवा देता है; और इसपर भी उफ तक नहीं करता।

उत्तर—अब आप लोग विचारिये कि कितना भारी अज्ञान है। इससे निष्ठुर हत्यारा कौन होगा जो कि अपने पाले हुए प्राणीकी भी गर्दन कटा सकता है. वह किसका उपकार करेगा। एक धर्मात्मा कहलानेके लिये जो अपने पुत्र, स्त्री तथा पालतू जानवरकी गर्दन पर भी छुरी चला सकता है ऐसे पुरुष का क्या विश्वास किया जाय उससे अधिक लुब्धक और कौन होगा ?

त्याग-इन्द्रियोंको विषयोंकी ओर नहीं जाने देना, सब प्राणीमात्रकी रक्षा करना, दुखीको देखकर अनुकम्पित होना यही त्याग है। इससे विपरीत अज्ञान और विमूढ़ता है।

और भी कहा है—

"सकमलवनमग्नेर्वासरं भास्वदस्ता
दमृतमुरगवक्त्रात साधुवादं विवादात
रुगपगममजीर्णाज्जीवितं कालकूटा
दभिलषति वधादूप्रः प्राणिनां धर्ममिच्छेत" ॥१॥

जो पुरुष प्राणियोंके बधसे धर्मकी इच्छा करता है, वह अग्नि से कमलकी इच्छा करता है, सूर्य के अस्त होनेपर दिनकी इच्छा करता है, सर्पके मुखमे अमृत की इच्छा करता है विवाद झगड़े से अपने को अच्छा कहलाना चाहता है अजीर्ण मे रोग की शान्ति चाहता है और काल कूट विष भक्षण मे जीवन चाहता है। ऐसा पूज्याचार्योंका मत है। कुछ लोग कहते हैं कि हम मन्त्रसे पवित्र करते मांस खाते हैं इसमें कोई दोष नहीं है। विधिपूर्वक

खाया गया मांस पुण्य का उत्पादक होता है। जो ऐसा कहते हैं उनका कहना बिलकुल अनुचित है। मांस मात्र अभक्ष्य है चाहे संस्कृत हो वा असंस्कृत। क्योंकि विषको मन्त्रसे संस्कृत करो या न करो, जानकर खाओ अथवा बिना जाने खाओ, जीने के लिये अथवा मरने के लिये खाओ हर हालत में विष प्राणनाशक होगा। बुद्धजीने भी कहा है :—

याद्दशं क्रियते कर्म, ताद्दशं प्राप्यते फलम्।

जिसने जैसा कर्म किया है वैसा ही उसक फल भोगना पड़ता है। भगवान् श्रीकृष्णजीने भी कहा है :—

यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भारत।
तावद्वर्षसहस्राणि पच्यन्ते पशुघातकाः॥

पशु के शरीरमें जितने रोम हैं उतने हजार वर्ष तक पशुघातक नरकमें अवश्य दुःख भोगेगा।

कल्पद्रुमावली पद्मोत्तरखंड १०४ अध्याय १०५ में पार्वतीने शिवजीसे कहा है कि पशुओं को मारकर जो मांस, रुधिर से हमारी, तुम्हारी पूजा करता है तबतक उसका नरकमें वास होगा जबतक कि सूर्य और चन्द्रमा हैं। तथोक्तं च—

पशून् हत्वा तथा त्वम्बायोऽर्चयेत् मांसशोणितैः।
तावत्तन् नरकेवासो यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

जहाँ पर ब्राह्मणादि उच्च कुलीन मांसाहारी हों वहाँ पर चाण्डालका क्या स्वरूप होगा, जहाँ पर हिंसा ही परम धर्म हो वहाँ

पर अधर्म का क्या स्वरूप होगा ? निरपराधी जीवों को आत्मसुख की इच्छासे मारता है वह जीता ही मुर्दाके समान है ऐसा मनुस्मृतिमें कहा है। (अध्याय पाँचवाँ म०) प्राणियोंके बध बन्धन आदि क्लेशों को जो नहीं करना चाहता वह बड़े भारी स्वर्ग और मोक्षके सुख प्राप्त करता है। जो पुरुष, डाँस, मच्छड़ आदि सूक्ष्म अथवा बकरा, भैंसा आदि बड़े जीवोंको कष्ट नहीं देता वह अभिलषित पदार्थको प्राप्त करता है। वह जो करना चाहता है वही कर लेता है। प्राणियोंकी हिंसा किये बिना मांस की उत्पत्ति नहीं और प्राणोका बध स्वर्ग सुखको देनेवाला नहीं। इसलिये सर्व मांसके भक्षणसे निवृत्ति होकर किसी भी जीवको नहीं सताना चाहिये। ऐसा मनुस्मृतिके पाँचवें अध्यायके ४४ से ४९ के श्लोकोंमें कहा है। तथा पाँचवें अध्याय के ५३-५४-५५ श्लोकों को देखिये—

"वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतंसमाः।
मांसानि न च खादेद् यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥५३॥"

प्रत्येक वर्षमें एक पुरुष सौ वर्ष तक यज्ञ करे और दूसरा पुरुष बिल्कुल मांस न खाए, दोनोंका समान फल है। अब आप लोग ही बिचारिये सबसे बड़ा यज्ञ अश्वमेध यज्ञ है जिसको चक्रवर्ती आदि तमाम पृथ्वीको जीतकर कर सकता है तो भी सौ पूरे होना दुष्कर होता है। उस यज्ञके करने पर प्रायश्चित भी करना पड़ता है। अन्यथा हिंसा जननी पापका नरकादिक फल भी भोगना पड़ता है। सांख्यतत्व कौमुदीमें भी लिखा है।

स्वल्पः शंकरः स परिहारः स प्रत्यवमर्षः।

जब एक मांसके छोड़नेसे शुद्ध सौ यज्ञोंका फल मिल जाता है तो मांस छोड़कर क्यों उसे न प्राप्त किया जाय और यज्ञमें पशु मारकर प्रायश्चित अवश्य विधेय है तो यज्ञमें पशु न मारना ही अच्छा है। कीचड़में पैर लिपटाकर धोनेकी अपेक्षा उसमें न घुसना ही अच्छा है।

मांस शब्दका महात्मा मनु ने ऐसा अर्थ किया है। जिसका मैं मांस खाता हूं वह मुझको जन्मान्तरमें खायगा। तथोक्तम्—

मांस भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५५॥

व्यासजीने और भी पुराणोंमें इस तरह कहा है—

"ज्ञानपाली परिक्षिप्ते ब्रह्मचर्यदयाम्भसि
स्नात्वाऽतिविमलेतीर्थे पापपङ्कापहारिणि ॥१॥"
"ध्यानाग्नौ जीवकुण्डस्थे दममारुतदीपिते।
असत्कर्म समित्क्षेपैरग्निहोत्रं कुरूत्तमम् ॥२॥"
"कषायपशुभिर्दुष्टैर्धर्म कामार्थनाशकैः।
शममन्त्रहुतैर्यज्ञंविधेहि विहितं बुधैः ॥३॥"
प्राणिघातात्तु यो धर्ममीहते मूढमानसः।
स वाञ्छति सुधावृष्टिं कृष्णाऽहिमुखकोटरात् ॥४॥"

ज्ञानकी है पाल जिसमें ब्रह्मचर्य और दयास्वरूप जलसे युक्त अत्यन्त निर्मल तथा पापरूप कीचड़को दूर करानेवाले तीर्थमें स्नान करके इन्द्रियोंके दमनरूप वायुसे प्रज्वलित हुई जीव रूप कुण्डमें रक्खी

हुई, ऐसी ध्यानरूप अग्निमें अशुभ कर्मरूप ईंधनके द्वारा अग्निहोत्र नामक उत्तम यज्ञको करे। धर्म, अर्थ कामके नाशक कषायरूप दुष्ट पशुओंके द्वारा जो कि शम मंत्रके द्वारा मारे गये हैं पंडितोंके द्वारा कहे गए इस यज्ञ को करे। जो प्राणियोंके घातसे धर्म चाहता है वह काले सर्पके मुखरूप गुफासे अमृतकी वृष्टिको चाहता है। अर्ची मार्गियोंने भी कहा है कि देवकी पूजाके निमित्त जो निर्दयी पुरुष प्राणियोंको निर्दय होकर मारता है वह दुर्गति पाता है। वेदान्तियोंके वचनको सुनिये---

अन्धे तमसि मज्जामः पशुभिर्ये यजामहे।
हिंसा नाम भवेद्धर्मो न भूतो न भविष्यति॥

इस विषयमें जैनाचार्योंके भी वाक्यामृत दर्शनीय हैं।

तथोक्तं च—क्रीडा भूः सुकृतस्य दुष्कृतरजः संहारवात्याभवो।
दन्वन् नौर्व्यसनाग्नि मेघपटली संकेतदूती श्रियाम्॥
निःश्रेणिस्त्रिदिवौकसः प्रियसखी मुक्तेः कुगत्यर्गला।
सत्वेषु क्रियतां कृपैव भवतु क्लेशैरशेषैः परैः॥

प्राणियों पर दया ही करनी चाहिये क्योंकि पुण्यकी क्रीड़ाका स्थान दया ही है, जोकि दुष्कर्म रूप धूलीके दूर करनेके लिये वायुके समान है, संसाररूपी समुद्रको तैरनेके लिये नौका है, पुरुषको लक्ष्मी प्राप्त करनेके लिये संकेतदूती है, स्वर्गमें जानेके लिये सोपान पंक्ति है, मुक्तिकी प्रिय सखी है और कुगति के रोकनेके लिये अर्गला है। और भी कहा है—

"यदि ग्रावा तोये तरति तरणिर्यद्युदयते ।
प्रतीच्यांसमार्चिर्यदिभजति शैत्यं कथमपि ॥"
"यदिक्ष्मापीठं स्यादुपरिसकलस्यापि जगतः ।
प्रसूतेसत्वानां तदपि न वधः क्वापि न सुकृतम् ॥१॥"

यद्यपि जलमें पत्थर तैरता नहीं है तो भी वह किसी प्रकार तैरे, सूर्य यदि पश्चिम दिशामें होवे, चाहे अग्नि यदि शीतल हो जावे इसी प्रकार कदाचित् पृथ्वी सकल जगतके उपर हो जावे तो जीवोंका वध कदापि सुखको देनेवाला नहीं हो सकता । और भी कहा है—जिस प्रकार कसौटी पर घिसना, छेदना, काटना, तपाना, ताड़ना इत्यादिसे सुवर्णकी परीक्षा की जाती है, वैसे ही विद्वान् लोग शील, संयम, तप, दयादि गुणोंसे धर्मकी परीक्षा करते हैं ।

महाभारत शान्ति पर्वके प्रथम पादमें भीष्मपितामह युधिष्ठिरसे कहते हैं—हे युधिष्ठिर ! जो फल प्राणियों को दया देती है वह चारों वेद भी नहीं देते, और न समस्त यज्ञ ही, तमाम तीर्थोंका स्नान, वंदन भी वह फल नहीं दे सकता । और भी कहा है—दुर्गन्धयुक्त नालीमें कीड़ेको और स्वर्गमें इन्द्रको जीवनकी आकांक्षा तथा मृत्युका भय दोनोंको समान है । बड़ेसे बड़े दानका भी फल कुछ कालमें क्षीण हो जाता है । किन्तु भयभीतको अभय दानका फल कभी क्षीण नहीं होता । एक हजार गायोंको ब्राह्मणोंको दान देनेका वह फल नहीं जो एक जीवको जीवनदान देनेका है । इष्ट-वस्तुका दान, बड़े बड़े तपोंका तपना और तीर्थोंकी सेवा करना ये सब अभयदान के सोलहवें भागके समान भी नहीं है । स्वर्ण, गौ, पृथ्वी आदिके

दाता बहुत हैं किन्तु प्राणियोंको अभयदान देनेवाला कोई विरला होता है।

एक तरफ तो सब यज्ञ और दक्षिणाएं हैं और दूसरी ओर भयभीत प्राणीके प्राण रक्षण हैं, एक तरफ मेरु पर्वत समान सुवर्ण दान और बहुत रत्नोंसे युक्त पृथ्वीका दान है और दूसरी ओर भयभीत प्राणी का प्राण बचाना है।

जब कि सुवर्णदान, पृथ्वीदान आदि जितने भी बड़े दान हैं, जितने सन्ध्या, तर्पण आदि धर्म कर्म हैं वे एक अभयदान की तुलना को प्राप्त नहीं कर सकते तो क्यों न प्राणियोंको अभयदान दिया जाय। तथाच—

"महतामपि दानानां कालेन हीयते फलम्।
भीताभयप्रदानस्य क्षय एव न विद्यते" ॥१॥
"कपिलानां सहस्राणि यो विप्रेभ्यः प्रयच्छति।
एकस्य जीवितं दद्यात् न च तुल्यं युधिष्ठिर" ॥२॥
"दत्तमिष्टं तपस्तप्तं तीर्थसेवा तथा श्रुतम्।
सर्वेप्यभयदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्" ॥३॥
"नातोभूयस्तपोधर्मः कश्चिदन्योऽस्ति भूतले।
प्राणिनां भयभीतानामभयं यत् प्रदीयते" ॥४॥
"हेमधेनुधरादीनां दातारः सुलभा भुवि।
दुर्लभः पुरुषोलोके यः प्राणिष्वभयप्रदः" ॥५॥
"यथा मे न प्रियोमृत्युः सर्भेषां प्राणिनां तथा।
तस्माद्मृत्युभयान्नित्यं त्रातव्याः प्राणिनोबुधैः" ॥६॥

"एकतः क्रतवः सर्वे समग्रवरदक्षिणाः ।
एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षम्" ॥७॥
"एकतः काञ्चनो मेरुर्बहुरत्ना वसुन्धरा ।
एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम्" ॥८॥

महाभारतमें युधिष्ठिरके प्रति भीष्मपितामह के वचन हैं। तथा च बाराह पुराणे उक्तम् च :—

जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजानि कदाचन ।
ये न हिंसन्ति भूतानि शुद्धात्मानोदयापराः ॥९॥

१३२ अ० ५३२ पृ०

भावार्थ—मनुष्य, गौ, भैंस, बकरी वगैरह और अण्डज अर्थात् सब प्रकारके पक्षी आदि अण्डेसे पैदा होनेवाले उद्भिज्ज यानी वनस्पति आदि, स्वेदज अर्थात् पसीनेसे पैदा होने वाले खटमल, मच्छर आदि समस्त जन्तुओंकी जो पुरुष हिंसा नहीं करते हैं वेही शुद्धात्मा और दयापरायण सर्वोत्तम हैं।

मनुस्मृति बराह पुराण, कूर्म पुराण आदिमें तो हिंसा करनेवालेको प्रायश्चित दिखलाया है इसलिये सभ्य जीवोंको उस प्रायश्चितका भागी नहीं बनना चाहिये। कीचड़में पहले पैर डालकर धोनेकी अपेक्षा उसमें पैर न डालना ही अच्छा है तथोक्तं च—

प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ।

मनुस्मृतिके ग्यारहवें अध्यायका ४४६वें पृष्ठ में प्रायश्चित-विधान इस प्रकार है:—

अभोज्यानां तु भुक्त्वाऽन्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च ।
जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान् पियेत् ॥

भावार्थ—जिसका अन्न खाने योग्य नहीं जैसे चमार आदि शूद्रोंका अन्न खाकर और स्त्री तथा शूद्रका जूठा खाकर सर्वदा अभक्ष्य ऐसे मांसको खाकर अगर कोई शुद्ध होना चाहे तो उसे सात दिन तक निराहार रह कर जौका पानी पीना चाहिये।

विधिविहित मांस खानेमें दोष न माननेवालेको श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धके २५वें अध्यायको देखना चाहिये—प्राचीन बर्हिषी राजाने नारदजीसे पूछा—भगवन्! मेरा मन स्थिर क्यों नहीं रहता है? तब नारदजीने योगबलसे देखकर कहा—राजन्! आपने प्राणियोंके बध वाले बहुतसे यज्ञ किये हैं इसीसे आपका चित्त स्थिर नहीं रहता है। ऐसा कहकर योगबल से राजाको यज्ञमें मारे हुए पशुओंका दृश्य आकाशमें दिखलाया। नारदजीने कहा कि राजन्! दया रहित होकर हजारों पशुओंको तुमने यज्ञमें मारा वे पशु क्रुद्ध होकर यह रास्ता देख रहे हैं कि राजा मरकर कब आवे, हमलोग अस्त्रोंसे काटकर उसका बदला चुकावें।

भोभो! प्रजापते! राजन्! पशून? पश्यत्वयाध्वरे।
संज्ञापितान् जीवसन्धान् निर्घृणेन सहस्रशः ॥७॥
एते त्वां संप्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशसं तव।
सम्परेत मयैः कूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः ॥८॥

इसके बाद प्राचीन बर्हिषि राजा नारदके चरणों पर गिर पड़ा और कहने लगा कि हे भगवान्! अब मैं हिंसा नहीं करूंगा।

किन्तु मेरा उद्धार कीजिए। तब नारदजीने ईश्वर भजनादि शुभ कृत्यों को बतलाकर उसका उद्धार किया। एकबार एक मुनिने एक मृगकी हिंसा की तब उस मुनिका जन्म भरका बड़ा भारी तप नष्ट हो गया। अतएव हिंसासे यज्ञ भी हितकर नहीं है वस्तुतः अहिंसा ही सकल धर्म है और अहिंसा धर्म सच्चा हितकर है। मैं तुम से सत्य कहता हूं कि सत्यवादी पुरुषका हिंसा करनेका धर्म नहीं। अन्यच्च—

महाभारत के २६५ वें अध्याय में ऐसा लिखा है—

सुरां मत्स्यान् मधुमांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतत् नैतद् वेदेषु कल्पितम्॥

भावार्थ—मदिरा पान, मछलीका भोजन, मांस भोजन, अपवित्र भोजन ये सब धूर्तोंसे ही कल्पित हुआ है किन्तु वेद कल्पित नहीं है।

अन्यच्च—यक्षाणां च पिशाचानां मद्यमांसभुजां तथा।
दिवौकसां तु भजनं सुरापानसमं स्मृतम्॥९५॥

पद्मपुराण अध्याय २८० पृष्ठ १९०८

यक्ष पिशाच मद्यमांस भक्षी देवों की पूजा सुरापान के समान बतायी है।

भावार्थ—यक्ष पिशाच मद्य मांस प्रिय देवताओंकी पूजन नहीं करनी चाहिए। फिर भी जो लोग श्राद्धसे मांस खानेका आग्रह करते हैं उन लोगोंने प्रायः श्रीमद्भागवतके ७ वें स्कन्धका २५ वां अध्याय नहीं देखा है, यदि देखा होता तो कभी आग्रह नहीं करते

तथोक्तं च—

> न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद् धर्मतत्ववित् ।
> मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥७॥
> तस्माद्वैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित् ।
> सन्तुष्टोऽहरहः कुर्यान्नित्य नैमित्तिकाः क्रियाः ॥११॥

भावार्थ—धर्मतत्वके ज्ञाता पुरुष तो श्राद्धमें न किसी को मांस देते हैं और न खाते हैं। क्योंकि मुनियोंके खाने योग्य व्रीही आदि शुद्ध अन्नसे पितरों को जैसी परम प्रीति होती है, वैसी पशुकी हिंसासे नहीं। इसी कारणसे धर्मज्ञ पुरुष दैविक कर्मके योग्य अन्न नीवारादिसे संतुष्ट होकर निरन्तर नैमित्तिकी क्रियाको करें, किन्तु कोई पुरुष हिंसा कदापि न करे। वृहत्पराशर संहिताके ५ वें अध्यायमें इस तरह मांसका निषेध लिखा है कि—

> यस्तु प्राणिवधं कृत्वा मांसेन तर्पयेत् पितृन् ।
> सोऽविद्वान् चन्दनं दग्ध्वा कुर्यादङ्गारविक्रयम् ॥२॥
> क्षित्वा कूपे तथा किञ्चित् बालमादातुमिच्छति ।
> पतत्यज्ञानतः सोऽपि मांसेन श्राद्धकृत् तथा ॥२॥

भावार्थ—जो पुरुष प्राणीका बध करके मांस से पितरों को तृप्त करना चाहता है, वह मूर्ख चन्दनको जलाकर कोयलोंको बेचना चाहता है, और किसी वस्तुको कूपमें गिराकर फिर उसे निकालने की इच्छासे बालक जैसे स्वयं कूएँमें गिर पड़ता है, वैसे ही मांससे श्राद्ध करने वाले अज्ञान के कारणसे दुर्गति को पाते हैं।

यज्ञमें हिंसा करनेसे धर्म नष्ट होता है इस बात को सूचित करने वाले महाभारत अश्वमेधके पर्व ९१ अध्याय "वेंकटेश्वर प्रेस पृ० ६३ लिखा है तथा—

आरम्भसमयेप्यस्मिन् गृहीतेषु पशुष्वथ।
महर्षयो महाराज बभूवुः कृपयान्विताः ॥११॥

ततो दीनान् पशून् दृष्ट्वा ऋषयस्ते तपोधनाः।
ऊचुः शक्रं समागम्य नायं यज्ञविधिः शुभः ॥१२॥

अपरिज्ञानमेतत्ते महान्तं धर्ममिच्छतः।
नहि यज्ञे पशुगणा विधिदृष्टाः पुरन्दर! ॥१३॥

धर्मोपघाकस्त्वेष समारम्भस्तव प्रभो!।
नायं धर्मकृतो यज्ञो न हिंसा धर्म उच्यते ॥१४॥

विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मस्तेषु महान् भवेत्।
यज्ञवीजैः सहस्राक्ष! त्रिवर्षपरमोषितैः ॥१६॥

अर्थ—हे युधिष्ठिर! यज्ञ मण्डपमें याज्ञिक लोगोंसे बध समयमें पशुओंको ग्रहण करने पर ऋषि लोग कृपावन्त हुए उसी समय ऋषि लोग इन्द्रके पास जाकर बोले कि बड़े धर्मकी इच्छा करने वाले इन्द्र! इसको यज्ञ विधि शुभ नहीं है, किन्तु तेरा अज्ञान मात्र है। हे प्रभु! यज्ञमें पशुबध विधि इष्ट नहीं है अर्थात् यज्ञमें पशु बध करना चाहिए यह विधि वेदमें नहीं है। किन्तु यह तेरा समारम्भ धर्मका घातक है इसीसे केवल विधिसे दिखाए गए तीन वर्षके पुराने बीजसे यज्ञ करोगे तो महान् धर्म होगा।

इसी प्रकार ऋषि और देवताओंके साथ यज्ञ विषयक वाद-विवाद वाला हिंसा मिश्रित धर्म निन्दाका सम्पूर्ण अध्याय है। जो राजा वसुने देवताओंका पक्ष लेकर अर्थ का अनर्थ किया, इसलिये वह नरकमें गया यह बात सबको विदित है।

इसी प्रकारका अधिकार महाभारत शान्तिपर्व मोक्षाधिकारके अध्याय ३३५ पत्र २४३ में भी है यथा—

युधिष्ठिर उवाच—

यदा भागवतोऽत्यर्थमासीद् राजा महान् वसुः।
किमर्थं स परिभ्रष्टो विवेश विवरं भुवः ॥१॥

भीष्म उवाच—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
ऋषीणां चैव संवादं त्रिदशानां च भारत! ॥२॥
अजेन यष्टव्यमिति प्राहुर्देवा द्विजोत्तमान्।
स च छागोप्यजोज्ञेयो नान्यः पशुरिति स्थितिः ॥३॥

ऋषयः ऊचुः—

बीजै र्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अजसंज्ञानि बीजानि छागं नो हंतुमर्हथ ॥४॥
नैष धर्मः सतां देवाः! यत्र वध्येत वै पशुः।
इदं कृतयुगं श्रेष्ठं कथं वध्येत वै पशुः? ॥५॥

भीष्म उवाच—

तेषां संवदतामेवमृषीणां विबुधैः सह।
मार्गागतो नृपश्रेष्ठस्तं देशं प्राप्तवान् वसुः ॥६॥

अन्तरिक्षचरः श्रीमान् समग्रबलवाहनः ।
तं दृष्ट्वा सहसाऽऽयान्तं वसुन्ते त्वन्तरिक्षगम् ॥७॥
उचुर्द्विजातयो देवानेष च्छेत्स्यति संशयम् ।
यज्वा दानपतिः श्रेष्ठः सर्वभूतहितप्रियः ॥८॥
कथंस्विदन्यथा ब्रूयादेष वाक्यं महान् वसुः ?
एवं ते संविदं कृत्वा विबुधा ऋषयस्तथा ॥९॥
अपृच्छन् सहिताभ्येत्य वसुं राजानमन्तिकात् ।
भो ! राजन् केन यष्टव्यमजेनाहोस्विदौषधैः ? ॥१०॥
एतन्नः संशयं छिन्धि प्रमाणं नो भवान् मतः ।
स तान् कृताञ्जलिर्भूत्वा परिपप्रच्छ वै वसुः ॥११॥
कस्य वै को मतः कामो ब्रूत सत्यं द्विजोत्तमाः ! ।
धान्यैर्यष्टव्यमित्येव पक्षोऽस्माकं नराधिप ! ॥१२॥
देवानां तु पशुः पक्षो मतो राजन् वदस्व नः ।

भीष्म उवाच—

देवानां तु मतं ज्ञात्वा वसुना पक्षसंश्रयात् ॥१३॥
छागेनाजेन यष्टव्यमेव मुक्तं वचस्तदा ।
कुपितास्ते ततः सर्वे मुनयः सर्ववर्चसः ॥१४॥
ऊचुर्वसुं विमानस्थं देवपक्षार्थवादिनम् ।
सुरपक्षो गृहीतस्ते यस्मात्तस्माद् दिवः पत ॥१५॥

भावार्थ—युधिष्ठिरने भीष्मपितामहसे प्रश्न किया—भगवान्का अत्यन्त भक्त राजा वसु परिभ्रष्ट होकर भूमितलको क्यों प्राप्त हुआ ? इनके उत्तर में भीष्मपितामहने कहा—विवाद कथा वाला पुराण इतिहास तुमसे मैं कहता हूं—हे भारत ! ऋषि लोगोंका और

देवताओंका विवाद इस तरह हुआ कि देवता उत्तम ब्राह्मणोंसे बोले अजसे यज्ञ करना चाहिए अजसे बकरा ही लेना दूसरे पशुको ग्रहण नहीं करना, किन्तु ऋषियोंने अपना पक्ष प्रकट किया कि यज्ञमें बीजादिसे होम करना, क्योंकि यह वैदिकी श्रुति अजसे बीज ही का ग्रहण करना है। इसलिए बकरेका मारना अच्छा नहीं। हे देवताओ! यह सत्पुरुषोंका धर्म नहीं है जो यज्ञमें पशुका बध किया जाय, क्योंकि यह सब युगोंमें श्रेष्ठ सतयुग है, इसमें पशुको मारना कैसे उचित हो सकता है। इस तरह देवताओंके साथ जब ऋषियों का विवाद हो रहा था. उसी समय आकाशमें चलनेवाला श्रीमान् समस्त सैन्य वाहनयुक्त नृपश्रेष्ठ राजा वसु उस देशको प्राप्त हुआ, जहां देवता और ऋषि लोग विवाद कर रहे थे। आकाशगामी उस राजा को सहसा आते हुए देखकर ऋषियोंने देवताओंसे कहा कि, दानवीर, यज्ञकी विधि को करानेवाला, सब प्राणियोंका हितकर, यह राजा वसु हम लोगों के संशयको नष्ट करेगा। यह महान् श्रेष्ठ राजा वसु अन्यथा कैसे कह सकता है। इस प्रकार वे ऋषि और देवता परस्परमें सलाह करके एक साथ राजा के पास जाकर बोले—हे राजन्! किससे यज्ञ करना चाहिए? बकरेसे अथवा अन्नसे। हमारे इस संदेहको दूर करने के लिये आप ही प्रमाण है। अतः आप हम लोगोंका संशय दूर कीजिए। तदनन्तर वह राजा हाथ जोड़कर उन देव और ऋषियों से बोला कि हे द्विजोत्तम! आप लोग सत्य कहिए किसको कौन सा मत अभिलषित है। तदनन्तर ऋषियोंने कहा धान्यों से ही यज्ञ

करना चाहिए यह तो हम लोगोंका पक्ष है, और देवताओंका पशु का हिंसा करके यज्ञ करनेका है। अतएव हे राजन्! हम लोगोंके संशयको दूर कीजिए। तदनन्तर देवताओंके पक्षको जानकर वसुने देवताओंके पक्षका ही आश्रय लिया। अर्थात् अज शब्दका छाग ही अर्थ है; यह बात पक्षपातके आवेशमें आकर कह दी। ऐसा सुनकर सूर्यके समान प्रतापी मुनि लोग क्रुद्ध हुए और विमानस्थ देवोंके पक्षपाती राजा वसुको शाप दिया कि जो तुमने पक्षपातसे देवताओंका ही पक्ष ग्रहण किया है इसलिये तुम्हारा स्वर्गसे पृथ्वीमें पात हो। अर्थात् तुम नरकको प्राप्त हो।

विवेचन—पूर्वोक्त कथनसे सिद्ध हुआ कि यज्ञ सम्बन्धी हिंसा भी नरक आदि दुर्गतिका ही कारण है। इसलिये किसीको भी देवी देवताके नाम पर किसी भी जीवका बध करनेका अधिकार नहीं है।

अब प्रसङ्गवश यह भी कह देना उचित समझता हूं कि जो मांसादिको खाने वाले कहते हैं कि तन्त्र क्रिया करने वालोंको तो अवश्य ही मद्य मांस भक्षण करना चाहिए क्योंकि ये सब बातें शास्त्र सम्मत हैं। इस विषयमें देवी भक्त किसी सज्जनने कहा है कि—

या योगीन्द्रहृदिस्थिता त्रिजगतां माता कृपैकव्रता।
सा तुष्येत् श्वपचीव किं पशुवधैर्मांसासवोत्सर्जनैः ॥१॥

तस्माद् वीरवरावधारय तदाचारस्य यद्बोधकम्।
रक्षोभिर्विरचय्य तच्च वचनं तन्त्रे प्रवेशीकृतम् ॥२॥

भावार्थ—जो योगी पुरुषोंके हृदयमें रहने वाली तीनों जगत्की

माता सब जीवों पर सदा दया रखने वाली देवी क्या चण्डालोकी तरह पशुवधसे और मद्य मांस आदि देनेसे प्रसन्न हो सकती है ? अतएव, हे वीरवर ! विचार की बात यह है कि ये सब वचन मांस भक्षी राक्षसोंने किसोके द्वारा बनवाकर तन्त्र शास्त्रमें प्रवेश करा दिए हैं।

अब उपरोक्त उदाहरणोंसे आप लोग यह तो समझ गए होंगे कि हिंसा, पर स्त्री गमन, और मांस भक्षण करनेसे कभी धर्म नहीं हो सकता। तथापि अगर कोई यह कहे कि हां, हिंसादि करनेसे धर्म होता है तो उसके रोकनेके लिये नीचे लिखा हुआ श्लोक अवश्य समर्थन करेगा।

> धर्मश्चेत् परदारसङ्गकरणात् धर्मः सुरासेवनात्।
> संपुष्टिः पशुमत्स्यमांसनिकराहाराच्च हे वीर ते ॥
> हत्या प्राणिचयस्यचेत् तव भवेत् स्वर्गापवर्गाप्तये।
> कोऽसत्कर्मतया तदा परिचितः स्यान्नेति जानीमहे ॥१॥

हे हिंसादि कर्मोंमें वीर ! यदि तुमको परदारा गमन, मद्य सेवनसे धर्म हो, पशु तथा मत्स्योंके आहारसे शरीरकी पुष्टि हो और जीवको मारनेसे स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति हो तो यह हम नहीं जान सकते कि कुकर्मी कौन पुरुष होगा अर्थात् उक्त कर्मोंको करने वाले ही पापी कुकर्मी नरकादिके क्लेशों को भोगने वाले होते हैं।

अहिंसाकी महिमा कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्र आचार्यने इस प्रकार कही है यथा—

मातैव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी ।
अहिंसैव हि संसारमरावमृतसारिणी ॥५०॥

अहिंसा दुःखदावाग्नि प्रावृषेण्यघनावली ।
भवभ्रमिरुजार्तानामहिंसा परमौषधिः ॥५१॥

योगशास्त्र द्वि० प्र० पृ० २६५

अर्थ—अहिंसा सब प्राणियों का हित करने वाली माताके समान है और वह अहिंसा ही संसाररूप मरुनिर्जल देशमें अमृतकी नालीके तुल्य है और दुखरूपी दावाग्निको शान्त करनेके लिये वर्षा कालकी मेघावलीके समान है। एवं भव भ्रमण रूप महा रोगसे पीड़ितके लिये परमषौधि है।

जैसे पर्वतों में मेरु, देवताओंमें इन्द्र, मनुष्योंमें चक्रवर्ती, ज्योतिष-देवोंमें चन्द्रमा, वृक्षावलीमें कल्पवृक्ष, ग्रहोंमें सूर्य्य, तथा सब ६४ इन्द्रोंमें जिनराज उत्तम हैं, वैसे ही समस्त व्रतोंमें श्रेष्ट पदवीको अहिंसा ही पाती है अर्थात् अहिंसा सब से श्रेष्ठ है।

दयावान् पुरुष सर्वत्र समदृष्टि होनेसे आदेय वचन, उज्वलकीर्ति, परम योगी, परोपकारी, ब्रह्मचारी इत्यादि विरदावलियोंसे सुशोभित होता है। इसलिये पशु पक्षी भी उसकी गोदमें निर्भय होकर बैठते हैं, और पशु पक्षी परस्परके जाति विरोध को छोड़कर परस्परमें प्रेमरूपी अमृतका पान करते हैं। यथा—

सारङ्गी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दनी व्याघ्रपोतं ।
मार्जारी हंसबालं प्रणयपरवशात् केकिकान्ताभुजङ्गम् ॥

वैराण्याऽऽजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजेयु।
दृष्ट्वा सौम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहम् ॥१॥

शान्तिमें लीन निष्कलुषितभाववाले योगीको देखकर कितने ही जीव जन्म जात बैरको छोड़ देते हैं। तथाहि—हिरणी सिंहके बच्चेको पुत्रके समान प्रेमसे स्पर्श करती है, और गौ व्याघ्रके बच्चेको तथा बिल्ली हंसके बच्चे को स्नेह बुद्धिसे देखती है, और मयूरी भी सर्पको मित्रतारूपसे देखती है।

अब आप लोगोंने दयालु पुरुषकी महिमाको देखा। इससे आप लोग हिंसाके भावोंको छोड़कर 'जीओ और जीने दो' इस सूत्रका मनन कीजिए तथा इसीका आचरण कीजिए, जिससे स्वयं परम सुखी हो जाओ। बलिदानका अर्थ ऐसा है—बलि लड्डू पेड़ा इत्यादिका दान। यही बलिदानका अर्थ है यही दान सर्वोत्तम है। इससे दुखी जीवों का पेट भरता है। पशुबलिका अर्थ यह है—पशु जिससे भले बुरेका ज्ञान न रहे ऐसी काम क्रोधादि रूप हमारी अन्तरङ्ग वासना है उसकी बलि करना, उसको नष्ट करना। दूसरे पशुकी बलि अर्थात् भेट, अर्पण करना, अर्थात् उसको भगवतीके मन्दिरों में छोड़कर हिंसक लोगोंसे निर्भयकर देना। जैसे कोई जज किसी अपराधीको प्राण दण्ड देता है जब तक वह आकर आज्ञा न दे तब तक जल्लाद लोग उसको मार नहीं सकते। अगर कोई बधिक यह सोचले कि जाड़ा पड़ रहा है। जज साहबको आने में कष्ट होगा उसको पहलेसे फांसी पर लटका कर जज साहबसे आकर समाचार सुना दें तो वह भी फांसीका अधिकारी होगा। इसी

प्रकार माताके हुकमनामा के बिना मारने वाला भी प्राणदण्ड पाने का अधिकारी है। मुसलमानोंके यहां भी वे बकरा ईदके दिन लाखों जीवों की जान ले लेते हैं। अगर उनके सच्चे फकीरसे पूछा जाय तो वह यही कहेगा कि यह धर्मसे विपरीत है। उनके यहां जो कालको मारना लिखा है, जिसका अर्थ वे लोग सर्पादि विषैले जन्तुसे लगाते हैं। पर उसका अर्थ क्रोध आदि हमारे अन्तरंग शत्रु येही काल हैं। इनके रहने पर जीव जन्म जन्मान्तरमें नाना दुःखोंको सहता है, जब तक ये क्रोधादि कषाय रहेंगे तब तक इसको कदापि चैन नहीं मिलेगा। इनको नष्ट करना ही कालको मारना है। कोई कहते हैं कि हन्ते को हनिए पापदोष नहीं गिनिए, पूर्ववत् क्रोधादि ही हमारे हनने वाले हैं। इनको ही मारने में निर्भय रहना चाहिए और भी कुछ कहते हैं, अगर हम लोग हिंसक सिंहादिकको मार देंगे तो बहुतसे जीवोंकी जान बच जायगी, यह भी कहना ठीक नहीं। कारण यह कि अनन्त जीव हैं किस २ को मारोगे, और जहाँ तुम उनको मारोगे उनकी मृतक् वायुसे बहुत से पैदा हो जावेंगे। अगर वह हिंसक होनेसे प्राण दण्डका अधिकारी है, तो तुम उसको मारते हो तुम भी हिंसक हुए। तुम भी दण्डके अधिकारी हुए। तुमको जो मारेगा वह भी इसी प्रकार अपराधी हुआ। इससे अनवस्था हो जायगी। कोई ठिकाना नहीं रहेगा। इसलिये किसी भी जीवको नहीं मारना चाहिए। अन्यच्च—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चाप्यधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥१॥

अर्थात् धर्मके स्वरूपको सुनना चाहिए। सुनकर धारण करो। जो काम हम को अपने लिये बुरे लगें वे दूसरेके लिये नहीं करें। जब हमें एक कांटा लगने पर भी बड़ा भारी दुःख होता है, तो हम दूसरे प्राणीके प्राणोंका घात किस प्रकार करते हैं। कोई कहते हैं। जलमें जन्तु हैं और स्थलमें हैं कोई स्थान भी ऐसा नहीं है जहां जीव नहीं है। फिर साधू अहिंसक कैसे हो सकता है। यथा—

जलेजन्तुः स्थले जन्तुः जन्तुः पर्वतमस्तके।
जन्तुव्याप्ते हि लोकेस्मिन् कथंभिक्षुरहिंसकः ॥१॥

अर्थात्—जलादिकमें सर्वत्र जन्तु हैं, श्वास लेने, चलने, फिरने, आदिमें जीव अवश्य मर जाता है। फिर जीवोंकी हिंसासे कोई नहीं बच सकता, तब भिक्षु अहिंसक कैसे हैं।

उत्तर—जीवोंके मरने वा न मरनेसे कोई हिंसक वा अहिंसक नहीं है किन्तु भावोंके द्वारा अहिंसक वा हिंसक है। जैसे डाक्टर ओपरेशन करता है उससे किसी मनुष्यके प्राण निकल भी जाते हैं तो भी डाक्टर हिंसाका भागी नहीं होता, कारण, उसके मनमें पूर्ण रूपसे उसकी रक्षाकी इच्छा थी। एक पुरुष मारनेके इरादेसे किसी के पीछे खड्ग लेकर दौड़ा। बीचमें ही पकड़ा गया तो भी वह दण्ड का भागी हो चुका, कारण यह कि उसके भाव मारने के थे। दूसरा पुरुष हाथमें छुरी लेकर एकको बचानेके उद्देश से मारने वाले के पीछे चला। अकस्मात् उसके हाथसे कृपाण छूटकर लग गई और वह मर गया। इसी अन्तरालमें वह पकड़ा गया। जिस समय वह न्यायाधीशसे बयान देता है और कहता है कि

मरने वाला डाकू है। एक पुरुष को बचाने के लिये मैं इसके पीछे दौड़ा था मेरे भाव मारनेके नहीं थे। इससे वह छूट जाता है, क्योंकि उसके भाव मारने के नहीं थे इससे प्रकट हुआ कि जीवोंके मरने वा न मरने पर हिंसा वा अहिंसा नहीं किन्तु भावों के ऊपर है। तथोक्तं च

भावोहि पुण्याय मतो भावो हि पापाय मतः।

कुछ लोगोंका प्रश्न है कि हिंसा से कोई नहीं बच सकता कारण कि वनस्पति में भी जीव हैं। तुम लोग वनस्पति आम नारङ्गी इत्यादि काटकर खाते हो तो हम बकरे आदिको खाएं। हिंसक दोनों समान है।

ऐसा कहना भी ठीक नहीं, कारण कि वनस्पतिके बिना हम जीवित नहीं रह सकते अर्थात् एकेन्द्रिय की हिंसा से हम बच नहीं सकते, जल, अग्नि वायु और वनस्पति ये प्राकृतिक वस्तुएं हैं, इनके बिना हमारा जीवन नहीं रह सकता मांस बिना हमारा जीवन रह सकता है। किंतु मांस खानेसे हमें तरह तरहके रोग हो जाते हैं। क्योंकि बहुतसे पशु बीमार होते हैं और उन्हीं रुग्ण पशुओं को मार कर बाजार में उनका मांस बेचा जाता है, इस कारण अति भयंकर रोगोंके ग्रास हो जाते हैं।

प्रश्न—जिस हिंसा से परिणाम रौद्र होते हैं वह त्यागनी चाहिए किन्तु जो शान्ति के लिये की गई हैं वह तो शांति अर्थात् विघ्नों को दूर करने वाली होगी।

उत्तर—विघ्नकी शान्तिके लिये की गई भी हिंसा विघ्नके लिए ही होती है जैसे किसीके कुलकी रीति है अमुक दिन हिंसा करनी चाहिए, कुलको शान्ति करेगी वह भी कुलको शान्ति न करके कुलका नाश करने वाली ही होती है। तथोक्तं च—

हिंसा विघ्नाय जायेत विघ्नशान्त्यै कृताऽपि सा।
कुलाचारधियाप्येषा कृता कुलविनाशिनी॥

देखिए कुल क्रम से आई भी हिंसाको छोड़कर कालसौरिक कषाई का पुत्र सुलस कैसा सुखी हुआ। तथोक्तं च—

अपि वंशक्रमायातां यस्तु हिंसां परित्यजेत्।
स श्रेष्ठः सुलस इव कालसौरिकात्मजः" ॥३०॥ यो० द्वि० २६१

कुल क्रमसे प्राप्त हिंसाको भी नहीं करना चाहिये, हिंसा त्याग करनेसे जैसे काल सौरिकका पुत्र सुलस श्रेष्ठ गिना गया उसका सार इस प्रकार है, जब सुलस के कुटुम्बने अनेक युक्तियों से उसको हिंसा करनेको बाध्य किया, यहां तक कि सुलसके पाप में भी भाग लेना स्वीकार किया। तब सुलस लाचार होकर कुल्हाड़ा लेकरके तो चला, किन्तु अपने कुटुम्बके सम्बोधन के हेतु तथा स्वयं हिंसासे सर्वथा छूटनेके निमित्त जान बुझकर अपने ही पैरमें कुल्हाड़ा मार लिया। जिससे उसका पैर रुधिरसे परिपूर्ण हो गया। तदनन्तर उसके चिल्लाने पर सभी कुटुम्ब एकत्रित होगए। इसके बाद उन लोगोंके उचित रीतिसे दवा करने पर भी सुलसकी वेदना शांत नहीं हुई। तब उसने अपने कुटुम्बसे यह कहा हमारे दुखमेंसे थोड़ा २ आप लोग बांट लो। उस समय एक वृद्धने

उत्तर दिया किसीकी पीड़ा क्या किसीसे बांटी जा सकती है। तब तो सुलस बोला जब तुम प्रत्यक्ष का दुख नहीं बांट सकते तो जन्मान्तरके नरकादिकके दुखको कैसे बाट सकते हो। जो मुझको झूठ मूठ हिंसा में फंसाते हो। इत्यादि अनेक युक्तियों द्वारा सुलस बेचारा पाप कर्मसे किसी प्रकार छूटा। इसीलिये वह श्रेष्ठ कहलाया। जो शान्ति के लिये हिंसा करते हैं वे मूर्ख हैं। दूसरेको अशांति पैदा करके अपनेको शांति कैसे मिल सकती है।

श्राद्धमें हिंसा श्रेष्ठ नहीं हैं। तथाहि—

एकस्थानचरोपि सुहृदा दत्तेन जीवन्नपि।
प्रीतिं याति न पिण्डकेन तदिदं प्रत्यक्षमालोक्यते ॥
जातःक्वाप्यपजोवितश्च किल यो विभ्रन्न लक्षान्तनुः।
मुग्धःश्वेव सतर्प्यते प्रियजनः पिण्डेनकोऽयंनयः ॥

एक स्थानपर रहनेवाला हो, जीता भी हो तथा पासमें बैठा हुआ भी हो तो भी वह स्वयं भोजन के द्वारा तृप्त होता है न कि मित्र के कल्पित भोजन से।

जब प्रत्यक्षमें यह हाल है अर्थात् स्वयं भोजन करनेसे ही तृप्ति होती है। मृत्यु के बाद कहीं पर उत्पन्न हुए तथा परोक्ष शरीर को धारण करनेवाले प्रिय जन माता पितादि दूसरे लोगों को भोजन कराकर कैसे तृप्त किए जाते हैं? दूसरी बात यह है कि मांस विना श्राद्ध क्रिया ठीक नहीं होती है ऐसी कल्पित युक्तियां देकर ब्राह्मणों की मांस द्वारा तृप्ति की जाती है। किन्तु ऐसे श्राद्ध करने की सम्मति धर्मानुकूल नहीं है।

एक समय ऐसा हुआ कि यशोधर महाराज के पुत्र ने एक भैंसा उनके श्राद्ध के लिये खरीदा, जो कि यशोधर महाराज का ही जीव था। उसको मार कर उसने श्राद्धमें ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया उसके बाद जब खुद भोजन करने बैठा तब एक ज्ञानी महात्मा वहाँ भोजन को आए किन्तु भोजन बिना किए ही चले गए। इससे वह श्राद्ध करनेवोला मुनिके पैरोंमें पड़कर बोला—महात्मन् ! आप मेरे घर पर पधार कर बिना भोजन किए ही क्यों चले आए ? मुनिने शान्ति स्वभावसे उत्तर दिया कि जहाँ मांसाहार हो रहा है वहांसे भित्ता लेनेका धर्म मुनिका नहीं। मुझे तुम्हारे घर आनेसे वैराग्यकी वृद्धि हुई है। तब उसने कहा कि मेरे घर जाने से आपकी वैराग्यकी वृद्धिका क्या कारण है सो कृपा करके कहिए। उसके उत्तरमें मुनिने उपकार बुद्धि से कहा कि जिसका श्राद्ध तुमने किया है वह उसी का जीव महिष था जिसे तुमने मारा है और जो कुत्ती मांस मिश्रित हड्डी खा रही है वह तेरी माता है और जिसको तू गोद में बैठाकर मांस युक्त कवल देता है वही तेरा पक्का दुश्मन है। ऐसे कारणोंको देख कर मुझे वैराग्य हुआ। सब समाचार जानकर उसे बड़ा दुख हुआ, उसने पश्चाताप किया और उसको निश्चय हुआ कि मांस से श्राद्ध करने से यह अनर्थ हुआ।

शान्त स्वभाव के पक्षपाती हेमचन्द्र आचार्य ने जीव दयामें अत्यन्त प्रीति रखनेके कारण हिंसा शास्त्रके उपदेश करनेवालोंमें नास्तिकसे भी नास्तिक कहा है तथोक्तं च—

ये चक्रुः क्रूरकर्माणः शास्त्रं हिंसोपदेशकम्।
क्वते यास्यन्ति नरके नास्तिकेभ्योपि नास्तिकाः ॥

जीवदया पालक मनुष्योंको देख कर याज्ञिक लोग हिंसाको विशेष पुष्ट करते हैं और क्षत्रियों के लिये तो वे लोग शिकार खेलना, मांस खाना इत्यादि धर्म बतलाते हैं और कहते हैं कि बिना हिंसक क्रूरकर्मा हुए देश की रक्षा ही नहीं हो सकती। इसलिये राजाओं को शिकार अवश्य खेलना चाहिए आदि। ऐसा विधान करना उनका उचित नहीं। अगर यह युक्तिसंगत होता तो धार्मिक राजा लोग इसको क्यों छोड़ते। राजा लोगों का तो धर्म यही है कि वे निरपराधी जीवों की रक्षा ही करें, न कि मार डालें। अतः निरपराधी जीवों को मारनेवाले क्षत्रियोंके पुरुषार्थ को महात्मा लोग तिरष्कार करते हैं। तथोक्तं च—

> रसातलं यातु यदत्र पौरुषं क नीतिरेषाऽशरणोह्यदोषवान्।
> निहन्यते यद्बलिनाऽति दुर्बलोहहा महाकष्टमराजकं जगत्॥
> पदे पदे सन्ति भटाः रणोत्कटा न तेषु हिंसा रस एव पूर्यते।
> धिगीदृशन्ते नृपते कुविक्रमं कृपाश्रये यः कृपणे मृगेमयि॥

भावार्थ—जो बलवान् पुरुष निर्बल पशु को शिकार वा बलि आदि करके मारते हैं, वह उनका पौरुष रसातल में जाय। यह कहां का न्याय है कि निरपराधी शरणरहित पशुका बध करते हैं, हाय २ बड़ा कष्ट है जो दीन जीवोंका कोई रक्षक नहीं अर्थात्, रक्षक ही भक्षक हो रहे हैं।

हे राजन्! जगह २ रण करने में प्रवीण ऐसे बड़े २ शूरवीर मौजूद हैं। यह वीररस उन पर क्यों नहीं दिखलाते, धिक्कार तुम्हारे

ऐसे पुरुषार्थको जो दया के पात्र मुझ दीन गरीब हिरण पर किया जाता है।

ऐसा नियम है कि जो मनुष्य हार जाता है वह अपने मुखमें घास लेकर यदि शरण में आ जाय तो विजयी राजा का वह क्षमा का पात्र है। फिर वह मारा नहीं जाता इसलिये मृग कहता है— हे राजन्! न तो मेरे पास शस्त्र है और न मैं उत्तम कुल का राजा ही हूं। किन्तु मुखमें तृण रखनेवाला निरपराधी जीव हूं और जो ऐसा नीच काम करते हैं तो क्या वे कुत्तेसे भी कम नीच हैं। तथोक्तंच—

वैरिणोऽपि विमुच्यन्ते प्राणान्ते तृणभक्षणात्।
तृणाहारा सदैवैते हन्यन्ते पशवः कथम्॥
वने निरपराधानां वायुतोयतृणाशिनाम्।
तिघ्नन् मृगाणां मांसार्थी विशिष्टो कथं शुनः॥

क्रूर कर्मी लोग अपनी क्षण भर की तृप्ति के लिये अन्य जीव का जन्म नष्ट कर देते हैं, क्या कोई बुद्धिमान् पुरुष यह योग्य मानेगा। बकरी विलाप द्वारा जो सुन्दर उपदेश भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने किया है वह नीचे दिया जाता है।

मानुस जनसों कठिन कोऊ जन्तु नाहिं जग बीच।
विकलछोड़ मोहि पुत्रलै हनित हाय सब नीच॥
वृथा जवनको दूसही करि वैदिक अभिमान।
सोई जो हत्यारा जवन मेरे एक समान॥

धिक् २ ऐसो धर्म जो हिंसा करत विधान।
धिक् २ ऐसा स्वर्ग जो बधकर मिलत महान॥
शास्त्रन को सिद्धान्त यह पुण्य सु पर उपकार।
× × × × ॥
हे विश्वम्भर ! जगतपति जगस्वामी जगदीस।
हम जगके बाहर कहाँ जो काटत मम सीस॥
जगमाता जगदम्बिके जगत जननि जगरानि।
तुम सन्मुख तुम सुतनको सिर काटत क्या जानि॥
त्राहि २ तुमरी सरन मैं दुखनी अति अम्ब
अब लम्बोदर जननि बिनु मोको नहिं अवलम्ब॥

अब मांसहार के लिये कबीर आदि महात्माओं ने क्या कहा उसे देखिये।

मांस अहारी मानई प्रत्यच्छ राच्छस जान।
ताकी सङ्गति मति करै होई भक्ति में हान॥
मांस खाय ते ढेड सब मद्य पिवै सो नीच।
कुलकी दुर्मति पर हरै राम कहै सो ऊँच॥
मांस मछलिया खात हैं सुरापान से हेत।
ते नर नरके जाहिंगे माता पिता समेत॥
मांस २ सब एक हैं मुरगी हिरनी गाय।
आँखि देख नर खात हैं ते नर नरकहिं जायँ॥
यह कूकर को भच्छ है मनुष देह क्यों खाय।
मुखमें आमिष मेलिके नरक परन्ते जाय॥